चार मीनारें

लेखक

श्री कामता प्रसाद सिंह 'काम'

प्रस्तावना

श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु



डाकबंगला रोड, पटना—1

लेखक

श्री कामता प्रसाद सिंह 'काम'

प्रस्तावना

श्री लक्ष्मीनारायण सुधांशु



डाकबंगला रोड, पटना—१

प्रथम संस्करण —१९५९

मूल्य—छ रुपये

प्रकाशक
पारिजात प्रकाशन
डाकबंगला रोड, पटना—१

★ वैयक्तिक और सामाजिक मानव-मूल्यों की अप्रतिम धरोहर

★★ साहित्यकार की अडिग आस्था एवं विश्वास

★★★ भाव, भाषा, शैली—सबकी अनुपमता

★★★★ एक प्रश्न; एक प्रेरणा

चार मीनारें

राधिकारमण प्रसाद सिंह 'राजा'

★ आसपास की दुनियाँ

★★ आत्मा की कथाएँ

★★★ नावक के तीर

★★★★ पठान का बच्चा

श्री कामता प्रसाद सिंह 'काम' उम्र में नवजवान, शरीर से पहलवान कलम के बलवान, अल्हड़ और फक्कड़, मस्त और लापर्वाह जिनके शरीर पर राजनीति के अखाड़े की धूल है पर जिनके हृदय में साहित्य के देवता की भक्ति है—हमारे सामने आये नये ताने-बाने के साथ, नये आनबान से, नयी सजधज से, एक नवीन शैली लेकर।

इनकी यह पुस्तक 'चार मीनारें' शब्दों का जादू है, कलम का करिश्मा है, अनुभव का भंडार है, जिसे विश्वास के साथ हम अपने पाठकों के हाथों में सौंपते हैं।

—प्रकाशक

प्रस्तावना

प्रस्तुत पुस्तक—चार मीनारें—श्री कामता प्रसाद सिंह 'काम' के वैयक्तिक निबंधों तथा कहानियों का संग्रह है। ये कहानियाँ कोरी कहानियाँ नहीं हैं, बल्कि इनमें भी वैयक्तिक निबंध का तात्त्विक आधार है। इस बात को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है कि 'काम' की कहानियों में निबंध के तत्त्व हैं और निबंधों में कहानियों की मनोरंजकता। यह एक दूसरी बात है कि कोई भी कहानी निबंधत्व से हीन नहीं होती, किन्तु इसी प्रकार यह कहना भी इतना सरल नहीं है कि निबंध में कथा-तत्त्व रहता ही है। जो समर्थ कलाकार होता है उसी से यह आशा की जा सकती है। हिन्दी साहित्य-संसार के लिए यह सौभाग्य की बात है कि 'काम' में वह प्रतिभा है और वह कलापूर्ण शैली भी जो साहित्य के इस महत्त्वपूर्ण क्षेत्र के कलाकार के लिए अपेक्षित है। इस पुस्तक की प्रकाशकीय टिप्पणी में लेखक के संबंध में लिखा गया है—'उम्र में नवजवान, शरीर से पहलवान, कलम के बलवान, अल्हड़ और फक्कड़, मस्त और लापर्वाह, जिनके शरीर पर राजनीति के अखाड़े की धूल है, पर जिनके हृदय में साहित्य के देवता की भक्ति है – हमारे सामने आये नये ताने-बाने के साथ, नये आनबान से, नयी सजधज से, एक नवीन शैली लेकर।' कहना नहीं होगा कि मैं उपर्युक्त उक्ति से अक्षरशः सहमत हूँ। मेरा यह भी अनुमान है कि इस उक्ति से साधारणतः 'काम' के प्रायः सब पाठक सहमत होंगे। किसी एक विचारात्मक उक्ति पर पूर्ण रूप से सबका सहमत होना न संभव है और न स्वाभाविक। राजनैतिक प्रजातंत्र में ५१ प्रतिशत से काम चलाया जा सकता है, किन्तु साहित्यिक प्रजातंत्र में शतप्रतिशत यदि संभव न हो तो ९९ से कम में काम नहीं चल सकता। साहित्य-शास्त्र का साधारणीकरण समान तथा स्वाभाविक रूप से सबके हृदय के धरातल को संतुलित रखता है।

'काम' के वैयक्तिक निबंधों के कुछ विषय हैं—मेरा टेबुल, मेरी जेब, मेरा नौकर, मेरी पत्नी, मेरी कलम, मेरा चुनाव और अनेक ऐसे ही। कहानियों के कुछ शीर्षक हैं—पठान का बच्चा, क्या वह वेश्या थी, भगत सिंह, फुआ, शिव सिंह आदि। 'नाविक के तीर' और 'आत्मा की कथाएँ' शीर्षक के अंतर्गत

अनेक ऐसे आत्मनिष्ठ तथा वस्तुनिष्ठ शब्दचित्र हैं जो निबंध तथा कहानी दोनों तत्त्वों से परिपूर्ण हैं।

मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ वह शायद दृष्टांत के अभाव में पाठकों के मर्म का स्पर्श नहीं कर सकेगा। 'मेरा चुनाव' की कुछ पंक्तियाँ देखिए—'मसल मशहूर है किसी से एक पुश्त की दुश्मनी हो तो उसको मुकदमे में फँसा दो, दो पुश्त की दुश्मनी हो तो पिंगल पढ़ने में लगा दो और अगर खान्दानी दुश्मनी हो तो बस बढ़ा-चढ़ा के खड़ा करा के उसको चुनाव में लड़वा दो।'

+ + + +

'चुनाव वही लड़ सकता है जिसकी जेब में जादू हो, मुख पर मुस्कान हो, मूँछ पर शान हो, पेट में बावन हाथ की अँतड़ी हो, पैर में चक्कर हो, दिल में कुछ और हो और जुबान पर कुछ और हो। अगर देना जरूरी हो जाय तो बस उम्मीद दीजिए, अगर कुछ करना जरूरी हो जाय तो बस हाँ-हाँ कर दीजिए जहाँ ढीले हुए, हालत खराब हो जायगी। घबड़ाये तो हार जायँगे और मन की बात जुबान पर आ गयी तो कौड़ी के तीन हो जायँगे। गाँठ बाँधिये, खोलिये मत, हाथ जोड़िये, बोलिये मत, इन मंत्रों को याद रखिये और आपका बेड़ा पार है।'

राजनैतिक क्षेत्र में चुनाव लड़नेवाले उम्मीदवारों के लिए 'काम' ने जो नसीहत दी है उसपर अमल चाहे सब न करें, लेकिन उसकी सत्यता को कौन अस्वीकृत कर सकता है!

'मेरी पत्नी'—शीर्षक निबंध की एक झाँकी देखिए—एक दिन मेरे साले साहब आये थे। श्रीमतीजी ने बाहर का दरवाजा बंद कर दिया और मुझ से बोलीं—'आज आप किसी से बात नहीं कर सकते। कोई आयेगा तो मैं उसके मुँह में आग लगा दूँगी। आज आपको मेरे भैया से बात करनी पड़ेगी।' यह एक अजीब बात है। श्रीमतीजी के भैया देहात के लोअर क्लास में पढ़कर पारंगत होने का सार्टिफिकेट लेकर फिर आगे नहीं पढ़े। बाद की सारी जिन्दगी इन्होंने गुमाश्तागीरी करने में गुजार दी। उनसे बात करोगे तो बतायेंगे कि उनके गाँव के पास अमुक के कब्जे में १०० बीघा खेत है, उनके

गाँव के अमुक ने कोयला की खान में नौकरी करके बड़ी तरक्की की और अब उसने पच्चीस बीघा खेत भी खरीद लिया है।

+ + + +

अमुक महतो की शादी अमुक स्थान में हुई थी पर अब लड़की की माँ रोसगदी नहीं करना चाहती है, इसके लिए उसने एक मुकदमा किया है, जिसमें वह मेरी मदद चाहते हैं और इसके लिए वह महतो पच्चीस रु० देगा भी। अमुक सख्स के लड़के को किसी मुकदमे में सजा हो गई है अगर किसी तरह से लड़का छूट जाय तो वह पचास हाजिर करने को तैयार है।

+ + + +

इसी वजह से मैं उनसे कम ही और कभी-कभी ही बोलता हूँ, पर उस दिन श्रीमती जी की आज्ञा हुई तो मैंने श्रीमतीजी से पूछा दिन भर क्या बात करनी है?

औरों से दिन भर क्या बात करते हैं? कहते हैं कि दुनियाँ भर के पंडित हैं तो फिर भैया से बात करने में क्यों घबड़ाते हैं? गांव में भैया के बराबर कोई है?

मैं क्या बोलता! निरुत्तर होकर रह गया। श्रीमतीजी को यह समझा सकना भी तो मुश्किल है कि मैं किससे क्या बात करता हूँ।"

'काम' की भाषा-शैली बड़ी विनोदरत, सरल तथा प्रसन्न है। साधारण-से-साधारण-सी वस्तु को लेकर 'काम' ने अपनी प्रतिभा का जो चमत्कार दिखाया है वह शतमुख प्रशंसनीय है। हिन्दी में ऐसे कलाकारों का बड़ा अभाव है जो मिट्टी के एक ढेले को सामने रखकर, पाठकों के साथ बातें करते विभिन्न शास्त्रों की झाकियाँ दिखाते हुए उन्हें विस्मय-विमुग्ध कर दें। पाठकों की प्रसन्नता को उपलब्ध करना ही कलाकार का सर्वोच्च पुरस्कार है। हिंदी साहित्य के इतिहास में 'काम' को, अपनी रचना-विशेषता के बल पर उपयुक्त स्थान प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं।

पटना,
रामनवमी, २०१६ वि०,

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

आसपास की दुनियाँ



मेरा टेबुल

देश-विदेश के खत देख लीजिये, देश-विदेश की पत्र-पत्रिकायें और देश-विदेश का कलापूर्ण सामान देख लीजिये, गोया मेरे टेबुल पर अजायबघर या जादूघर का छोटा नमूना देख लीजिये।

एक विचित्र परीशानी है। सुबह शाम रोज साफ करता हूँ पर तब भी अस्तव्यस्त, खूब देखभाल कर ठीक से सामानों को रखने की कोशिश करता हूँ पर तब भी किताब पर कापी, कापी पर ग्लास, खतों पर दावात और दावात पर आइना और आइना पर कंघही। देखते-देखते न जाने कैसे यह सब हो जाता है।

राय होती है कि टेबुल बराबर साफ रहे, सुन्दर रहे। खद्दर का बढ़िया टेबुलक्लाथ लाता हूँ, पार्क के माली को चार आना रोज पर ठीक करके उससे नित्य प्रति बेहतरीन फूलों का गुलदस्ता मंगवाता हूँ, एक बेहतरीन पेपरवेट और सिगरेट की राख फेंकने को एक सुन्दर 'ऐस्ट्रे' मगवाता हूँ। पर इससे टेबुल क्या साफ रहता है? नहीं। फौरन चीजें इधर से उधर हो जाती हैं, एक-एक करके और भी चीजें उस पर आने लगतीं है, एक चीज और एक चीज और करते-करते न जाने कितनी चीजें हो जाती है और टेबुल का रूप फिर अस्तव्यस्त हो जाता है।

रोज नौकर को ताकीद करता हूँ कि सबसे पहले टेबुल साफ कर दिया करे। दो तीन रोज तक यह सिलसिला चलता है। फिर चाय में देरी हो जाती है, तब उससे पूछता हूँ कि क्यों देरी हुई? वह कहता है कि चूँके टेबुल साफ कर रहा था इसलिये चूल्हा नहीं जला सका। मैं कहता हूँ कि अच्छा अब से पहले चूल्हा धरा के तब टेबुल साफ किया कर। वह यही करता है। देखने में यह आता है कि चूल्हा धराते, चौका बुहारते और चाय बनाते उसे देरी हो जाती है तब तक लोगों के आने-जाने का सिलसिला शुरू हो जाता है और टेबुल अपने अस्तव्यस्त रूप में पड़ा रह जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि टेबुल को साफ रखने के लिये एक नौकर और चाहिये। पर इतना पैसा कहां?

कभी सोचता हूँ खुद से टेबुल साफ किया करूँगा। दो तीन रोज यही करता हूँ। फिर मित्रों का सिलसिला शुरू होता है। हमारे शत्रुघ्न बाबू आते है तो अकारण एक न एक चीज इधर से उधर रख देते हैं। मदन जी आते है तो किताबों की ऐसी उलट-पुलट करते है कि गीता नीचे चली जाती है, वात्सायन का कामसूत्र ऊपर चला आता है। मुरारी भाई आते है तो डायरी को देखने के लिये सारे सामानों का क्रम बिगाड़ देते हैं। देहात से मेरे निर्दोष स्वयंसेवक लोग आते है तो पेपरवेट, ऐस्ट्रे, गुलदस्ता सब की दुर्गति हो जाती है। लीजिए भरोसा सिंह ने ऐस्ट्रे को आगे-पीछे देखने में यों उलट दिया कि टेबुल पर राख का राज हो गया और पंखे की हवा से कमरे में भी राख उड़ने लगी और मेरे लिखने के कागज पर सड़ा तम्बाकू और सिगरेट के छोटे-छोटे अवशेष नजर आने लगे। महेशा सिंह आये, उन्हें फूलदान पसन्द पड़ा। उलट-पुलट करने में वह पलट गया, लुढ़क गया। फूलदान का सारा पानी टेबुल पर बह गया। कागज, कलम, दावात, किताब सब गोया गंगा में

स्नान करने का फल पा गये और गणेशा सिंह के हिस्से क्या पड़ा ? पंखा अन्तिम स्पीड से घर-घर नाच रहा था। चिट्ठियां दबा के रखी हुई थीं। कई रोज की डाक थी। गणेशा सिंह ने उस पर रखे हुए पेपरवेट को देखने के लिए उठा लिया। कागज इधर-उधर बिखर गये। टेबुल पर, फर्श पर चारों तरफ जैसे कोई उनका मालिक मुख्तार नहीं है। पर ऐसा न समझिये कि यह किस्सा सिर्फ देहातियों के लिए है। एम० एल० ए० और एम० एल० सी० भी बहुतेरे ऐसे हैं जो इसकी पुनरावृत्ति करते हैं। एक बार तो मैंने उस पर बाजाप्ता यह लिख कर रख दिया (प्लीज डू-नॉट टच एनिथिंग) पर कौन मानता है। साहब ? दोस्त लोग कहते हैं कि यह कानून उनके लिए थोड़े हैं ? सभ्यता की बात भी नहीं समझते। गोया मित्रों के लिए न कानून कवायद कोई चीज है, न सभ्यता और तहजीब की कहीं गुंजायश है, न शील संकोच का कोई नाम है।

कई बार ऐसा हुआ कि अगल-बगल के किसी कमरे में जाने पर मैंने देखा कि उनके टेबुल पर सिर्फ किताब ही है। न जाने क्यों मुझको वह प्रबन्ध बड़ा अच्छा लगा। मैं तो तंग आ ही चुका, था कई चीज रखकर। इसलिए फौरन मैंने वही इन्तजाम किया। पर क्या मेरा छुटकारा हो गया ? क्या वास्ता छुटकारा होने से ? उससे भी बुरी बला सामने आयी। एक दोस्त आये सुबह देने का वादा करके एक किताब लेते गये। दूसरे आये उन्होंने शाम में लौटाने का वादा किया और चलते बने। उन लोगों का सुबह शाम कभी नहीं आया पर सुबह शाम के वादे में और दोस्तों के फेरे में टेबुल बिल्कुल साफ हो गया। अपने टेबुल की हालत देखने से मुझे ऐसा मालूम होने लगा कि यह मुल्क पढ़नेवालों और लिखनेवालों के रहने की जगह नहीं, बल्कि उनके रहने की जगह है जो पढ़ने-लिखने को तिलांजलि दे दें। अपने इलाके से आये हुए एक सज्जन से मैंने इस बात की चर्चा की। वे दुःखी हो गये। हां दुखी हो गये, इसलिए नहीं कि मेरी किताबें चली गयीं, बल्कि इसलिए दुःखी हो गये कि मैंने ऐसा क्यों कहा। वे बोले कि चुनाव का समय आयेगा, तो घर का घर साफ हो जायगा, पर मैं सबका स्वागत करूंगा और यहां एक टेबुल साफ हो गया तो इसमें दुःख मानने की क्या बात ?

जो भी हो, सब होने पर भी इस टेबुल पर मैंने जितनी चीजें लिखी उतनी कभी नहीं और कहीं तथा किसी टेबुल पर नहीं लिखी गयीं। करीब दो बरस से यह कमरा मेरे कब्जे में है, दो बरस से यह टेबुल मेरे पास है, बिजली पंखा की सुविधा है, इसलिए लिखना भी खूब होता है। यह भी एक

बात है कि इतने लम्बे अर्से तक मैंने अब तक किसी टेबुल का संग नहीं किया। घुमक्कड़ जिन्दगी में मैं बराबर इधरसे उधर रमता रहा और चूंकि कहीं एक बार इस प्रकार जमने का अवसर नहीं आया, इसलिए कभी दो बरस तक एक टेबुल का संग नही हुआ। कहीं डाकबंगला, कहीं होटल, कहीं किसी मित्र का घर और सब जगह भिन्न-भिन्न टेबुल, भिन्न भिन्न डिजाइन का, भिन्न-भिन्न लकड़ी का बना हुआ, भिन्न-भिन्न आकार प्रकार का। कभी-कभी मैं सोचता हूं कि इस प्रकार टेबुल में नित्य परिवर्तन होने से मैं जम के लिख नहीं पाया, पर क्या करूं ? न मेरा घर, न मेरा टेबुल, न मेरा अख्तियार।

और अगर एक टेबुल पर आज जमा भी तो इस पर एक ही काम नही करना है, बल्कि कई काम करना है। सामान रखना, किताब रखना, खाना, लिखना, चाय पीना, नास्ता करना, ताश खेलना, शतरंज खेलना, हजामत बनाना, लिखना तथा पढ़ना। टेबुल एक, काम अनेक। इसके बाद अगर कभी मेरे कमरे में भीड़ हो गयी तो एकाध सयाने सूझबूझ के आदमी फौरन एक दो चीज हटाकर टेबुल पर बैठ जाते हैं और यों बैठ जाते है, गोया अब बिना टेबुल के टूटे वे वहां से उठेंगे ही नही। इससे भी आगे बढ़ जाते हैं साव जी। पिछले दिनों अपने परिवार के लोगों के व्याह में मैंने इनसे चार हजार रु० लिया था। उसके तकादे में आते हैं। पता नहीं कि रु० जल्द वसूल करने की नीयत से या बेवकूफी से, साव जी जब आते हैं अपना छाता इसी टेबुल पर पहले रखते है और मैं हटवा के उसको एक कोने में रखवाता हूं। और देवचन्द बाबू तो कायदा कानून, सभ्यता सादगी, आचार विचार, व्यवहार एवं शिष्टाचार सब को ताक पर रख कर इस टेबुल पर अपने पावों का अगला भाग ही रख देते हैं। सामने कुर्सी पर बैठते हैं और टेबुल पर पाव फैला देते हैं। प्रतीत होता है कि अब पैर से वे खाना खायेंगे। पर उनको कहूं तो क्या ? वे तो अपने जोम और दौलत के जोश में समझते हैं कि उन्होंने जो चला दिया वही कानून हैं, वही न्याय है, वही सामाजिक धर्म है। मेरे एक और मित्र हैं, आनरेरी मजिस्ट्रेट। वे जब आते हैं तो जलती हुई सिगरेट ही टेबुल पर रख देते है। उनका कहना है कि एेस्ट्रे में रखने से सिगरेट जूठी हो जाती है। नतीजा यह हुआ है कि हमारा टेबुल जगह-जगह जल गया है। पर दुनिया में सिर्फ आनरेरी मजिस्ट्रेट के सिगरेट की आग ही इस टेबुल की दुश्मन है यह समझना भूल है। मेरे एक अन्य बन्धु जो अक्सर यहां आते हैं, अपनी चाबियों के गुच्छे में एक छोटा चाकू रखते है। पहुँचे नही

कि चाकू का फल निकला और उसकी नोक से टेबुल को कुरेदने लगे। न जाने इसमें उनको क्या मजा मिलता है ?

मैं कभी-कभी सोचता हूँ कि मेरे पास एक बड़ा मकान होता, उसमें बहुत से कमरे होते और हर कमरे में टेबुल होता तो अलग-अलग टेबुल से अलग-अलग काम लिया जाता। उस हालत में एक टेबुल आनरेरी मजिस्ट्रेट महोदय की सिगरेट से जलने के लिये अलग रखा रहता और एक टेबुल मेरे मित्र के चाकू का मुकाबला करता। पर इन्सान के अरमान पूरे कहां होते हैं ? हां यह बात और है कि इसी टेबुल को कभी में बीच कमरे में रखता हूं, कभी दीवार से सटा कर रखता हूं, कभी सीधे रखता हूँ और कभी तिरछे रखता हूँ। मानो इसी एक टेबुल से इधर-उधर करने का सारा शौक मैं पूरा कर लेता हूँ।

राम बाबू आते हैं तो टेबुल का कुछ और ही उपयोग करते हैं। जब जोर से बोलेंगे टेबुल पर हाथ से एक धमाका देंगे, गोया अपनी बात को वे टेबुल तोड़ कर साबित कर रहे हैं। मैंने एक बार कहा—"रहम करो राम बाबू ! एक ही टेबुल है।" वे फौरन बोले—"परमात्मा को धन्यवाद दो कि यह भी मिल गया नहीं तो हमलोग तो अक्सर स्टेशन के वेटिंग रूम में टेबुल पर ही सो जाया करते थे। हां इसके साथ मोह मत लगाओ। नेह लग जाने से एक रोज छोड़ने में तकलीफ भी हो सकती है। टूट जाये, टूटने दो, फट जाये, फटने दो, हट जाये, हटने दो।" राम बाबू की इन बातों से मेरी आँखो के सामने वह सारा जमाना नाच गया, जब मैं भी स्टेशन के वेटिंग रूम में टेबुल पर खर्राटे मार के सोता था। मैं सोचता हूं कि मैं ने भी टेबुल पर कम जुल्म नहीं किया है। आज अगर मेरे टेबुल पर लोग जुल्म करते हैं तो उसमें परीशान और नाराज होने की कौन बात है ?

बहुत से राजनीतिज्ञों के बारे में सुनता हूँ कि वे टेबुल की बदौलत सरदार बन गये। हां टेबुल पोलिटिक्स में प्रवीण होने के कारण उनके सिर पर ताज दिया गया। मेरे टेबुल में वह क्षमता है कि नहीं सो तो मैं अभी नहीं जानता, पर इतना जानता हूँ कि इस टेबुल पर भी बड़े-बड़े महत्व के काम हुए हैं। गोष्ठी हुई है तो कवियों और लेखकों की कापी इस पर रखी गयी है। राजनीतिक निश्चय हुए हैं तो इलाका और व्यक्तियों का हिसाब इसी पर हुआ है, कलाकारों का आदर किया गया है तो इसी पर उनके चित्र रखे गये हैं और संगीत एवं वाद्य के प्रेमी आये हैं तो इसी पर उनका सितार और उनकी बांसुरी रखी गयी है।

यही टेबुल मेरा सम्बन्ध आज जहान से जोड़ता है। इसी पर आकर डाकिया खत रखता है और इसी पर बन्दा खतों का जवाब लिखता है। यही पर वे अखबार रखे जाते हैं जिनको पढ़ कर लोग संसार का समाचार जानते है। हां सुबह में इस टेबुल पर अंग्रेजी हिन्दी मिला कर छः अखबार आते हैं पर शाम तक मित्र लोग एक-एक को लेकर पार हो जाते हैं क्योंकि मेरे इर्द-गिर्द वैसे लोगों का पड़ाव है, जिनका यह विश्वास है कि मजा मोल लेकर पढ़ने में नहीं बल्कि मुफ्त हासिल करके पढ़ने में है।

अंग्रेजी में एक कहावत है कि (ए-मैन इज नोन बाई दि कम्पनी हि किप्स) अर्थात् संगति से ही मनुष्य की पहचान होती है। मेरा ख्याल होता है कि मैं उसे यों बना दूँ कि (ए-मैन इज नोन बाई हिज टेबुल) अर्थात् मनुष्य की पहचान उसके टेबुल से होती है। क्योंकि टेबुल पर जो चीजें होती हैं वे आपकी रुचि को लोगों के सामने स्पष्ट करनेवाली है। पर मेरे बारे में तो टेबुल देख कर लोगों को गलत धारणा हो जायगी। क्योंकि मैं जो खाने पीने का शौकीन हूँ, मैं जो पढ़ने-लिखने का शौकीन हूँ, क्योंकि मैं जो कला की बारीकियों का भक्त हूँ, अपने दोस्त लोगों की वजह से एक चीज भी अपने टेबुल पर नहीं रख पाता। State Express (स्टेट एक्सप्रेस) सिगरेट के ९९९ का डिब्बा रखिये तो एक्सप्रेस चिट्ठी जैसे जल्दी जाती है वैसे ही जल्दी टीन खत्म हो जाती है। घड़ी रखिये तो वह एक घड़ी भी रहने नहीं पाती। पार्कर कलम रखिये तो मित्र लोग कहते हैं कि वह तो पार करने के लिए बनी ही है, सुन्दर पैड सामने रखिये तो यहीं से लोग प्रेमिकाओं को पत्र लिखने लगते हैं और अगर लिफाफा रख दीजिये तो आते ही बोलते है "वाह, वाह यही तो खोज रहा था। हां भाई, आज एतवार है, इसलिये डाकघर में न स्टाम्प मिलता है न लिफाफा" इतना कह कर वे एक व्याख्यान देते हैं कि जब से कांग्रेस सरकार आयी उसने एतवार को डाकघर बन्द कर के थोड़े से कर्मचारियों को राहत तो दी, पर अगणित लोगो के लिये उसने ऐसी असुविधा कर दी कि जिसका ठीकाना नहीं। और सब के बाद वे एक लिफाफा उठा कर जेब में रख लेते हैं जैसे वह उनका जन्मसिद्ध अधिकार हो। नतीजा यह होता है कि मैं उनके डर के मारे अपनी रुचि का कोई सामान टेबुल पर नहीं रख पाता। पता नहीं साफ और खाली टेबुल देख कर लोग मेरे बारे में क्या सोचते हैं

वे कौन हैं इसको नहीं कहूंगा। हां, जैसे क्लास के साथी होते हैं, ट्रेन के साथी होते हैं, गली के साथी होते हैं, वैसे ही टेबुल के साथी और दोस्त भी होते हैं। पर क्यों होते हैं इसको खोलना ठीक नहीं, यह पाठकों को स्वयं समझ लेना है।

इस प्रकार अपने इस फ्लैट के टेबुल के साथ मेरी यह जिन्दगी चल रही है। "आगे-आगे देखिये होता है क्या?"

और आज इस लेख को लिखने के लिये मैंने अपने टेबुल को थोड़ी देर के लिये फिर सजाया है और इसीलिये कहता हूँ कि देश विदेश की पत्र-पत्रिकायें देख लीजिये, देश-विदेश के खत देख लीजिये, देश-विदेश का कलापूर्ण सामान देख लीजिये और मेरे टेबुल पर अजायबघर या जादूघर का छोटा नमूना देख लीजिये।

मेरी जेब

जादू की खजाना, भानुमती की पिटारी, रहस्यों और भेदों के गुप्त रखने के लिये चोली, देखने में भोलीभाली पर कमाल का काम करने-वाली यह मेरी जेब है जिस पर मुझे नाज है और उनको भी नाज है जिनकी इज्जत यह मौके बेमौके बचाती है। ऐसा कहने की वजह है और वह यह है कि मैं एक ऐसा आदमी हूँ जिसको जमा पूँजी पर कोई भरोसा नहीं भरोसा है तो सिर्फ जेब पर है। इसको यों कहिये कि मैं जो कुछ रखता हूँ पास में, पासबुक म कुछ भी नहीं रखता। इससे कभी लाभ भी होता है, कभी घटी भी होती है। सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि बैंक फेल करने का न मुझे अंदेशा होता है न